Pallava Temple Architecture (पल्लव मन्दिर)

Dr. Dilip Kumar
Assistant Professor (Guest)
Dept. of Ancient Indian History & Archaeology,
Patna University, Patna
Paper – CC-IX, Sem. – II

प्राचीन भारतीय इतिहास में विशेषकर दक्षिण भारत के इतिहास में पल्लवों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कला और प्रशासन के क्षेत्र में इनकी देब अद्वितीय है। पल्लव स्थापत्य कला के इतिहास बिना भारतीय स्थापत्य कला का इतिहास अधुरा है। पल्लव नरेशों ने मन्दिर स्थापत्य के विकास में विशेष अभिरुचि दिखलाई। इन शासकों के काल में कई मन्दिर का निर्माण हुआ, जो विशेष शैली के है। राजाओं ने शैली का नामाकरण अपने नाम पर किया।

पल्लव राजा द्वारा निर्मित मन्दिर को दो मुख्य समूहों में बाँटा जा सकता है। प्रथम समूह के अन्तर्गत महेन्द्रवर्मन शैली और नरसिंहवर्मन शैली के मन्दिर रखे जाते है। दुसरे समूह के अन्तगर्त राजसिंह शैली तथा नन्दिवर्मन शैली के मन्दिर रखे जाते है। महेन्द्रवर्मन शैली तथा नरसिंहवर्मन शैली के मन्दिर का निर्माण प्राचीन शिलाघटित पद्धति के अनुसार हुआ अर्थात प्रस्तर खंडो को तथा पहाड़ियों को खोद कर भवनों अथवा मंदिरों का निर्माण किया गया। इस पद्धति से मण्डपों तथा रथों का निर्माण हुआ।

महेन्द्रवर्मन ने केवल स्तम्भ युक्त मंडपों का निर्माण करवाया अर्थात स्तम्भ युक्त कक्षों का निर्माण हुआ। नरसिंहवर्मन के शासनकाल में इन मंडपों को और भी अधिक विकसित किया गया। नरसिंह शैली को मामल्य शैली भी कहते है। 'मामल्य' नरसिंहवर्मन की उपाधि थी। इस शैली की विशेषता चट्टानों को काटकर रथों का रूप देना था। मंडप चट्टानों को खोदकर बनाये गए जबकि रथ एकाश्मक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रथों के भीतरी भाग अधूरे है तथा एक दुसरे से अलग है। 647ई. में नरसिंहवर्मन की मृत्यु के उपरान्त पल्लव नरेशों ने इस शिलाघटित भवनों के निर्माण पद्धति का सर्वथा परित्याग कर दिया। इसके बदले राजसिंह के शासनकाल में प्रस्तर खंडो को जोड़कर मंदिरों के निर्माण का प्रयास प्रारंभ हुआ। सम्भव है कि रथों के रूप में स्वतंत्र मंदिरों के निर्माण में कठिनाई अनुभव करने पर शिल्पियों ने इस नवीन पद्धति को अधिक सुगम समझा हो। राजसिंह के शासनकाल में छः मंदिरों का निर्माण हुआ :- समुन्द्रतटीय मन्दिर,

मुकुन्द मन्दिर, ईश्वर मन्दिर, वैकुण्ठपेरूमल मन्दिर, पनमलई मन्दिर और कैलाशनाथ मन्दिर । स्थापत्यकला के दृष्टीकोण से इन मंदिरों में समुन्द्रतटीय मन्दिर, कैलाशनाथ मन्दिर और वैकुण्ठपेरूमल मन्दिर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

समुन्द्रतटीय मन्दिर - महाबलीपुरम अथवा मामल्लपुरम स्थित समुन्द्रतटीय मन्दिर अथवा शोर मन्दिर का निर्माण नरसिंहवर्मन॥ राजसिंह ने 728 ई. में करवाया था । इन मन्दिर की निर्माण योजना पल्लव शैली की अन्य मंदिरों से भिन्न है । एक प्रकार से यह एकाश्मक रथों का विकसित रूप प्रतीत होता है । यद्धपि दोनों की निर्माण पद्धति में अंतर दिखता है । इस मन्दिर का निर्माण प्रस्तर खंडो को जोड़कर किया गया है, अतः संरचनात्मक भवनों का निर्माण, राजसिंह शैली की प्रमुख देंन है । इसका निर्माण ग्रेनाइट पत्थरों से हुआ है इसमें राजसिंह का एक अभिलेख भी मिला है । इस मन्दिर की निर्माण योजना धर्मराज रथ के सदृश्य है, दोनों का निचला भाग वर्गाकार है और उपरी भाग में शुन्डाकार छत की योजना है, जिसका निर्माण कई परतों में हुआ था। ये परतें उपर की ओर संकुचित होती गई है लेकिन शिखर के आकर में मौलिक कल्पना की झलक मिलती है ।

यह मन्दिर संरचनात्मक मन्दिर का प्रथम उदाहरण है । इस मन्दिर की असामान्य स्थिति एवं निर्माता के उद्देश्य के कारण इसकी योजना परम्परा से भिन्न है । अंतनिर्हित उद्देश्य यह था कि गर्भगृह का मुख पूरब दिशा में समुन्द्र की ओर हो ताकिउषा कि प्रथम किरणें मन्दिर के प्रकोष्ठ को आलौकिक करे और समुद्रतट पर आने वाले जहाज से मन्दिर का गर्भगृह दिखलाई पड़े। दिन में यह मन्दिर जहाजों को अपनी स्थिति का ज्ञान कराये और रात्रि में आकास दीप की तरह इन्हें दिशा निर्देश दे । अभी एक प्रस्तर स्तम्भ मन्दिर के पास खड़ा है जिसपर दीप इसी उद्देश्य से रखा जाता होगा ।

अतः गर्भगृह को समुन्द्र के कगार पर निर्मित करने के कारण उसके समक्ष आँगन अथवा सभामंडप निर्मित करने के लिए स्थान का आभाव हो गया । प्रवेश द्वार के लिए भी कोई स्थान नहीं बचा इसलिए इन सभी अंगो को गर्भगृह के पीछे की ओर बनाया गया। इस मन्दिर के चारो ओर एक विशाल परकोटा बना हुआ है। जिसमें प्रवेश करने के लिए पश्चिम की ओर से व्यवस्था है । पश्चिम की ओर परकोटा बिलकुल खुला जो मन्दिर के पश्चिम एक खुला आँगन बन जाता है । इस सरल योजना को जटिल बनाने के लिए पश्चिमी छोड़ पर दो अतिरिक्त कक्ष बनाये गए, जो मूल योजना से असम्बद्ध है। इन कक्षों में एक के उपर एक लघु शिखर बना है, जो प्रथम दृष्टि में प्रवेश द्वार प्रतीत होता है । ये दो अतिरिक्त कक्ष शोर मन्दिर को दोहरे शिखर वाला

स्मारक बना देता है जो पल्लव स्थापत्य परम्परा के अनुकूल प्रतीत नहीं होता है । अतः इस मन्दिर में गर्भगृह सभाकक्ष तथा परांगन की ब्यवस्था है लेकिन सभाकक्ष एवं परांगन गर्भगृह के आगे की न होकर पीछे की ओर स्थित है ।

मन्दिर का शिखर आठ पहलदार है । इस मन्दिर के अर्द्धस्तम्भों की बनावट विशिष्ट माना गया है । स्तम्भ शीर्ष का भार ग्रहण किये हुए सिंह की मुर्तिया उत्कीर्ण है। इसप्रकार की मूर्तियाँ मन्दिर के प्रत्येक कोणों के विक्षेपण में भी उत्कीर्ण है । वलैयन - कूट्टई रथ की कोनियाँ (ब्रैकेट) में इस प्रकार का चित्रण देखने को मिलता है ।

राजसिंह शैली के पूर्व जितने भी संरचनात्मक भवनों का निर्माण हुआ। किसी में भी सिंह की मूर्तियाँ स्तंभों से सम्बद्ध नहीं है। संरचनात्मक भवनों के अध्ययन से सिद्ध होता है कि जैसे - जैसे यह पद्धति विकसित होती गई, सिंह की मूर्ति भी इसी अनुपात मेंनिर्मित की गयी और अन्तोगत्वा यह पल्लव शैली का विशिष्ट अंग बन गया । यह निर्विवाद है कि यह गौण अंग राजसिंह शैली में प्रमुख अंग के रूप में प्रकट हुआ।

समुद्रतटीय मन्दिर चारो ओर से एक परकोटे से घिरा है और इसकी कई रोचक विशेषता है । ऐसा प्रतीत होता है कि परकोटे की न्युविन्यास अथवा ground planned में छिछले जलकुण्डों की ब्यवस्था थी जिसे विशेष अवसर पर जल से भरा जाता होगा और तब यह मन्दिर जल मन्दिर की तरह लगता होगा । इन जलकुण्डों में जल नहरों द्वारा समुद्र से लाया जाता होगा और अतिरिक्त जल पीछे की ओर से समुद्र में गिरा दिया जाता होगा । मन्दिर के चारो ओर बनी चाहरदीवारी भी भव्य है । इसके उतरी भाग पर घुटने के बल बैठी बृषभ की मूर्तियाँ है। चाहरदीवारी के बहरी भाग में थोड़ी - थोड़ी दूर पर अर्द्धस्तम्भ उभरे हुए है जिनपर सिंह की मूर्तियाँ है। पश्चिम भाग में अत्यंत अलंकृत मुख्य प्रवेश द्वार है । यह मुख्य प्रवेश द्वार एक गलियारे में ले जाता है जो चहारदीवारी के अन्दर के हिस्से तथा दूसरी ओर एक आयताकार भवन से जुड़ा है । यह आयताकार भवन सम्भवतः मंडप था जिसकी नीव मिली है । इस लम्बे गलियारे के प्रायः आगे भाग में स्तम्भ युक्त तोरण पथ बना है, जिसमे एक बेदी सम्भवतः नागपूजा के लिए बना था । गलियारे के भीतरी भाग पर पौराणिक कथाओं का चित्रण है, जो इसे प्रस्तर में चित्रशाला का रूप देते है ।

कांजीवरम् का कैलाशनाथ मन्दिर - राजसिंह के शासन काल का दूसरा महत्वपूर्ण मन्दिर कांजीवरम् का कैलाशनाथ मन्दिर है, जिसका निर्माण समुद्रतटीय मन्दिर के पश्चात् हुआ

था । इस मन्दिर में तीन प्रमुख अंगों की योजना है - शुन्डाकार शिखरयुक्त गर्भगृह मंडप अथवा स्तम्भयुक्त बृहत् कक्ष तथा परकोटे से घिरा आयताकार परांगना

परकोटे के पूर्वी किनारे के अतिरिक्त मन्दिर के शेष भाग योजनानुकुल निर्मित है परन्तु कालांतर में 14वीं शताब्दी में गर्भगृह और मंडप को अन्तराल अथवा अंतर मध्यकक्ष के द्वारा जोड़ दिया गया, जिसके कारण मुख्य देवालय के कई महत्वपूर्ण अंग छिप गए । कैलाशनाथ मन्दिर का मुख्य भवन चहारदीवारी के पूर्वी किनारे पर निर्मित है। स्थापत्यकला के दृष्टिकोण से यह धर्मराज रथ के समान है लेकिन बाद में निर्मित तीन परिशिष्ट कक्षों की निर्माण पद्धति में समुचित विकास दिखता है । चहारदीवारी के अन्दर कई छोटे - छोटे देवालयों की योजना है, जिसमे सोमस्कंद की मूर्तियाँ एवं शिवलिंग है। चहारदीवारी के बाहर एक नन्दी मंडप है ।

मन्दिर का शिखर आठ पहलदार और शुन्डाकार है, कालांतर में इसे अधिक आकर्षक, समानुपातिक एवं संतुलित बनाने का प्रयास प्रारंभ हुआ फिर भी स्थापत्य कला की दृष्टि से इसमे परिपक्वता का आभाव है । इसे द्रविड़ स्थापत्य के क्रमिक विकास का द्वतीय सोपान कहना ही ज्यादा उचित होगा ।

मन्दिर के परांगन के लिए बना प्रवेश द्वार वास्तुशिल्प के दृष्टिकोण से उत्कृष्ट माना जाता है । इसका निर्माण बाद में हुआ प्रतीत होता है, क्योकि यह मूल योजना से असम्बद्ध है । यह एक प्रकार से मन्दिर के ही प्रतिरूप ही है, इसे गोपुरम भी कहते है । दक्षिण भारतीय स्थापत्य में गोपुरम को विशेष स्थान दिया जाता है । कैलाशनाथ मन्दिर का प्रवेश द्वार गोपुरम के प्रारंभिक अवस्था की झलक देता है । इस मन्दिर का अंग - प्रत्यंग द्रविड़ स्थापत्य के लक्षणों के अनुकूल नियोजित है । दीवारों की बनावट, गर्भगृह के निकट भीतरी चहारदीवारी, परंपरागत शैली के मंडप स्तंभों में सिंह की मूर्तियों का चित्रण इस मन्दिर की विशेषता प्रकट करती है । इस मन्दिर में अनेक ताखें बनी है, जिसमे गणेश, सप्तमात्रिका, नरसिंह विष्णु, शिव का तांडव नृत्य, शिव का संहार रूप, अनुग्रह रूप आदि का चित्रण हुआ है। इस मन्दिर का जीर्णोधार बाद में किया गया जिससे मन्दिर के कुछ विशिष्ट अंगों का रूप परिवर्तित हो गया। इस मन्दिर में अनेक लेख मिले है जिसमे एक चालुक्य नरेश विक्रमादित्य का भी लेख प्रमुख है।

कांजीवरम् स्थित बैकुंठपेरूमल मन्दिर - यह मन्दिर पल्लव स्थापत्य शैली की परिपक्व रचना है । इस मन्दिर का निर्माण कैलाशनाथ मन्दिर के शीघ्र पश्चात हुआ था । कैलाशनाथ मन्दिर की अपेक्षा यह मन्दिर काफी विशाल है । बलुए पत्थर ने निर्मित इस मन्दिर का वास्तु विन्यास विशिष्ट प्रकार का है । 90 फुट वर्गाकार इस मन्दिर की पूर्व दिशा की ओर

28 फुट का एक विक्षेपण है जो बरसाती का आभास देता है । मन्दिर के बाह्य भाग की बनावट ऊँची दीवार के सदृश्य है, जिसके भीतर मठों की योजनाएं है । इन मठों में सिंह्युक्त स्तंभों की कतारें है और शोभायात्रा के लिए एक पाश्वमार्ग की ब्यवस्था है जो मठ के चारों ओर से होता हुआ मुख्य भवन में अाती है । मन्दिर के बाह्य की सतह अर्द्धसंरचनाओं तथा विविध अलंकरणों से उत्खाचित है । ये अर्द्धरचनाएँ शिखर का भ्रम उत्पन्न करती है । वास्तव में काफी ऊँचा शिखर गर्भगृह के उपर स्थित है।

इस मन्दिर का मुख्य भवन दो खंडो में विभक्त है - गर्भगृह और बरसाती। ये दोनों अंतराल द्वारा इस प्रकार जुड़े है कि एक इकाई के रूप में दिखते है । गर्भगृह आयताकार है जबकि बरसाती **21**½ फुट वर्गाकार है । बरसाती में आठ स्तम्भ इस प्रकार ब्यवस्थित है कि एक पाश्व मार्ग बन गया है जो अंतराल होकर गर्भगृह की ओर जाता है। गर्भगृह बाहर से 47 फुट वर्गाकार है और अन्तराल से 60 फुट ऊँचा है । यह चार मंजिलों में नियोजित है । प्रत्येक मंजिल पर जाने के लिए सीढियों की व्यवस्था है । गर्भगृह के उपर शुन्डाकार गगनचुंबी शिखर है इसके चारो ओर एक बरामदा है जो दक्षिणापथ के रूप में प्रदर्शित होता है । इस मन्दिर में विष्णु की शयन, आसन और खड़ी प्रतिमाएँ मिलते है । तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इस मन्दिर में वह सजीवता और आकर्षण नहीं है जो कैलाशनाथ मन्दिर में दिखलाई पड़ता है ।

नन्दिवर्मन शैली - पल्लव स्थापत्य शैली का अंतिम चरण नन्दिवर्मन शैली के मंदिरों में दिखलाई पड़ता है जिसका निर्माण नन्दिवर्मन तथा उसके उतराधिकारियों के काल में हुआ। इसके अन्तगर्त 5 मन्दिर आते है । कांजीवरम स्थित मुक्तेश्वर तथा मतंगेश्वर मन्दिर, ओदर्गम स्थित - बडमलिश्वर मन्दिर, तिरुवनी स्थित - विरात्नेश्वर मन्दिर तथा गुडीमल्ल में स्थित - परशुरामेश्वर मन्दिर । ये सभी मन्दिर छोटे आकार के है और पूर्व निर्मित है, मंदिरों के प्रतिरूप के रूप में । अतः इनमें कोई नवीनता नहीं है और न कोई इनकी अपनी विशेषता है । नन्दिवर्मन और उसके उतराधिकारियों के शासनकाल में पल्लवों की शक्ति क्षीण पड़ गयी । कांजीवरम स्थित दो मंदिरों में केवल दो स्तम्भयुक्त बरसाती की योजना है शेष चार मन्दिर बहुत कुछ सहदेव रथ की तरह दिखलाई पड़ते है । इस प्रकार स्पष्ट है कि पल्लव शासकों ने मन्दिर निर्माण में विशेष अभिरुचि दिखलाई और एक विशेष कला शैली को जन्म दिया ।

नवीं शती के मध्य में इस वंश की शक्ति क्षीण होने लगी तथा इसकी कला भी पतनोन्मुख हो चली । फलस्वरूप, पल्लव वंश के हास के साथ ही पल्लव स्थापत्य शैली भी समाप्त हो गयी ।

महाबलीपुरम के रथ (Ratha's of Mahabalipuram) - पल्लव स्थापत्य के प्रथम समूह के द्वितीय भवन निर्माण शैली नरसिंह वर्मन के काल में विकसित हुई जिसमें मंडप के साथ - साथ रथों का भी निर्माण हुआ। जैसा कि सर्वविदित है कि इसने अपने नाम पर महाबलपुर नामक एक नगर बसाया था जो मद्रास से 32 मील दक्षिण पलार नदी के मुहाने पर स्थित है। इसके उतर दक्षिण आग्नेय चट्टानों की एक विस्तृत श्रृंखला है। इसी माम्लय शैली के भवन निर्मित है, मंडपों की संख्या 10 है। नरसिंह वर्मन द्वारा निर्मित रथों के साथ - साथ पल्लव स्थापत्य शैली में द्वितीय चरण का सूत्रपात होता है। इन भवनों की बाह्य रुपरेखा रथों के सदृश्य है, अतः इनका प्रयोग देवालय के रूप में होता है।

मंडपों की भांति रथों का निर्माण चट्टानों को काटकर एवं खोखला बनाकर किया गया है किन्तु दोनों की निर्माण पद्धति में प्रयाप्त अन्तर है। मंडप चट्टान को खोदकर बनाया गया है जबकि रथ एकाश्मक है, ये किसी संरचनात्मक भवन की तरह प्रतीत होते है। सामान्य आकार के इन रथों की संख्या आठ है, इसमें द्रौपदी रथ के अतिरिक्त अन्य सात रथों का निर्माण योजना चैत्यों एवं विहारों के सदृश्य है, इसलिए ये सप्त पेगोडा के नाम से विख्यात है। इन सात रथों में धर्मराज रथ, भीम रथ, अर्जुन रथ और सहदेव रथ का निर्माण पर्वत के दक्षिणी छोड़ पर किया गया तथा गणेश रथ उतरी छोड़ पर निर्मित है। पर्वत के उतरी - पूर्वी छोड़ पर वलैयन कुट्टई - रथ और पीदरी रथ स्थित है, लेकिन वास्तुकला के दृष्टिकोण से ये दोनों रथ विशेष के नहीं है। स्थापत्य कला के दृष्टिकोण से ये सारे रथ बौद्ध धर्म से सम्बंधित दिखते है। लेकिन साथ ही साथ गज, सिंह तथा वृषभ की उत्कीर्ण मूर्तियाँ शैव धर्म की प्रधानता साबित करती है क्या इसपर शैव एवं बौद्ध दोनों धर्म का प्रभाव मानना चाहिए, यथार्त यही है इस पर किसी भी धर्म का प्रभाव नहीं है। तीन चैत्य कक्ष वाले भवन की छत के तिकोने भाग में प्रतीकात्मक विषय के अंकन तथा प्रत्येक देवालय में अंकित विभिन्न प्रकार की कथावस्तु इसकी संपुष्टि करती है। ये रथ धर्मनिरपेक्ष है। इन सभी रथों की स्थापत्य शैली एक है। इनका निर्माण स्रोत भी एक ही है।

महाबलिपुरम स्थित रथों में सबसे बड़ा धर्मराज रथ है। इसकी योजना वर्गाकार है। इसकी लम्बाई 42 फुट, चौड़ाई 35 फुट और ऊंचाई 40 फुट है। रथ की निर्माण योजना बौद्ध विहारों से प्रभावित लगता है। बौद्ध विहारों में एक कक्ष और परांगन की व्यवस्था रहती थी। भिक्षुओं की संख्या में वृद्धि के साथ भीतरी भाग को स्तम्भ युक्त सपाट छतों से ढक दिया। बाद में आवश्यतानुसार इसमें उपर भी कक्ष बनाये गए जिनकी छत गुम्बजाकर होती थी। धर्मराज रथ

की मूल योजना इस प्रकार की है जो यह प्रमाणित करता है कि किस प्रकार बौद्ध विहारों को कालांतर में शायद हिन्दू देवालयों में परिवर्तित कर दिया गया। यह रथ पूर्णतः निर्मित है । इसका बाह्य भाग स्थापत्य शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट है तो भीतरी भाग बनावट की दृष्टि से । उपरी भाग दो खंडो में नियोजित है (१) वर्गाकार भाग जिसके नीचे स्तम्भ युक्त मंडप है (११) शुन्डाकार भाग जो गर्भगृह के उपर निर्मित है। धर्मराज रथ का आधार भाग अलंकृत है । इसके साथ ही साथ सिंह स्तम्भ युक्त मंडप तथा शिखर युक्त छत भी भव्य है ।

बौद्ध चैत्य पद्धति पर निर्मित सहदेव रथ, भीम रथ और गणेश रथ की स्थापत्य शैली भी उत्कृष्ट है । इन आयताकार रथों में दो या दो से अधिक मंजिलों की योजना है । इनकी छत पीपे की भांति खोखला है और उपरी भाग जहाज की पेंदी जैसा है जिसका शीर्ष भाग तिकोना है । भुवनेश्वर के बैताल देवल और ग्वालियर के तेली के मन्दिर से इन रथों की साम्यता है । इन तीनो रथों में गणेश रथ की बनावट भिन्न है, वस्तुतः इसमें भीम और सहदेव दोनों रथों की निर्माण शैली का समावेश है । अंतर केवल इतना है कि गणेश रथ का प्रवेश द्वार स्तम्भयुक्त मंडप में खुलता है । इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि द्रविड़ स्थापत्य शैली के प्रमुख अंग गोपुरम की कल्पना इन प्रवेश द्वारों से की गई है । वास्तव में ये तीनों रथ मन्दिर के ही एक रूप है जो भविष्य में दक्षिण भारत के नवीन स्थापत्य शैली के रूप में विकसित हुए।

इन रथों में द्रौपदी रथ का आकर सबसे छोटा है, यह पूर्ण तथा निर्मित है। इसकी बनावट तम्बू के सदृश्य तिकोना है । हो सकता है कि इसे शोभा यात्रा के प्रतिक स्वरुप बनाया गया होगा । अलंकरण का आभाव इस रथ की विशेषता है, स्थापत्य नवीनता के कारण अपने समूह के रथों से यह पृथक श्रेणी का दिखता है, इसके आधार भाग में सिंह और गज की मूर्तियाँ नियोजित है। इसको इस ढंग से नियोजित किया गया है मानों रथ का भार ग्रहण कर रहे थे ।

इन रथों के विश्लेषण से स्थापत्य सम्बन्धी वास्तु विशेषज्ञों के लिए समस्या पैदा करते है (i) रथों के भीतरी भाग अधूरे क्यों है (ii) रथों में उनके प्रतिरूप क्यों अंकित है (iii) प्रत्येक रथ स्वतंत्र रूप से निर्मित किये गये । कतिपय विद्वानो का यह मत है कि इन रथों के माध्यम से शिल्पियों ने निजी भावना को अभिव्यक्त किया है । कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार रथों के निर्माण में दार्शनिक भावना निहित थी, लेकिन स्पष्ट होकर कुछ कहना कठिन है । मामल्लपुरम के एकाश्मक तथा चट्टानों को खोदकर बनाये गए भवनों का निर्माण पुर्णतः वही हो सका । संभवतः राजनैतिक उथल - पुथल के कारण शिल्पियों को अपना व्यवसाय बंद करना पड़ा, हालाँकि यह सत्य है कि इतिहास ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं करता । एक संभावना यह है

कि 647 ई. में नरसिंह मामल्ल की मृत्यु के कारण मामल्ल/मामल्य स्थापत्य शैली का अंत हो गया । आगे का कार्य शायद इसी कारण से रुक गया ।

मामल्ल/मामल्य शैली के इन भवनों के अतिरिक्त कुछ अन्य भवनों के भी भग्नावशेष मिले है । वास्तुकला के अध्ययन के लिए ये अति उपयोगी है । इन भग्नावशेषों में एक दुर्ग का अवशेष अब भी वर्तमान है । यह एक राजप्रसाद था जिसकी नींव ऊँची और ठोस थी, संभवतः यह ईट और लकड़ी का बना है । इसकी दीवारों में संभवतः प्लास्टर किया गया था । इन महलों में अर्द्ध स्तम्भों का प्रयोग भी दिखता है । इसके आधार पर यह भी निष्कर्ष निकालने का प्रयास हुआ है कि शायद धार्मिक भवन चट्टानों को काटकर या खोदकर बनाये जाते थे, जबकि लौकिक भवनों का निर्माण ईट और लकड़ी से किया जाता था ।

धार्मिक भवनों में पुष्कर्णी या जलकुण्डों की योजना प्रमुख अंग के रूप में की गई है । भारतवर्ष के कुछ मंदिरों में मामल्य शैली का यह प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है । भारत के अतिरिक्त अंकोरवाट, जावा और बोरोबुदुर के मन्दिर भी इस शैली से प्रभावित है । पल्लव स्थापत्य शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रायः सभी मंडप और रथ कलात्मक मूर्तियों से सुसज्जित है। एलोरा के कैलाशनाथ और एलिफैन्टा में भी इस प्रकार की मूर्तियों का अलंकरण है, किन्तु ये बाद की रचनाएँ है । अतएव, इन्हें पल्लव स्थापत्य की देंन कहना अधिक उपयुक्त होगा । मामल्लपुरम की मूर्तियों में उत्तेजना एवं तीक्ष्णता है । इनकी स्वतंत्र मूर्तियाँ सौम्य, परिश्कृष्ट एवं परिमार्जित है । ये मूर्तियाँ अत्यंत सजीव एवं कलात्मक है। पर्सी ब्राउन महोदय का मत है कि पल्लव शैली पर आधृत होने के कारण ही जावा और कम्बोडिया की मूर्तियाँ उत्कृष्ट एवं कलात्मक है।